जनवरी १९९० हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धन्य धर्म!

श्रावस्ती निवासिनी माता विशाखा भगवान की प्रमुख गुहस्थ शिष्याओं मे से एक थी। अपने पूर्व पुण्यों के कारण वह सात वर्ष की बाल्य अवस्था में ही अपने दादा-दादी और माता-पिता के साथ भगवान के संपर्क में आयी और सद्धर्म में प्रतिष्ठित हुई। विवाह होने पर अपने पति के घर श्रावस्ती में आ बसी और एक आदर्श गृहस्थ नारी का जीवन जीने लगी।

माता विशाखा के अनेक संतानें थीं। सभी पर भगवान की शिक्षा का गहरा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। उसका एक पुत्र था मिगजालतिस्स। घर गृहस्थी के जंजाल से मुक्त होकर वह प्रव्रजित हुआ और भगवान के भिक्षु संघ में सम्मिलित हुआ। भगवान से विपश्यना साधना विधि सीखकर अप्रमत्त हो पुरुषार्थ में लग गया। समय पाकर उसे परम मुक्त अवस्था प्राप्त हुई। पुरुषार्थ-सिद्धि के लिए वह जिस मार्ग पर चला उसका प्रत्यवेक्षण किया। हर्षविभोर होकर बुद्ध तथा उनके बताए हुए धर्म के प्रति कृतज्ञता के भावों से भावविभोर हो उठा। उस समय उल्लास की जो कल्याणी वाणी प्रस्फुटित हुई वह चिरकालतक विपश्यी साधकों के लिए प्रेरणा का स्रोत साबित हुई।

जीवन मुक्त मिगजाल ने कहा,

सुदेसितो चक्खुमता, बुद्धेनादिच्चबुन्धुना - मांस चक्षु, दिव्य चक्षु, प्रज्ञा चक्षु, बुद्ध चक्षु और समन्त चक्षु इन पांचों से सम्पन्न जो चक्षुष्मान भगवान बुद्ध हैं, सूर्यवंशी क्षत्रिय कुलमें जन्मने के कारण और सम्यक्‌सम्बोधि के प्रबल प्रताप से महातेजस्वी होने के कारण जो आदित्यबंधु हैं, उन भगवान द्वारा भली प्रकार उपदेशित यह धर्म है।

सब्ब संयोजनातीतो - यह काम राग आदि सभी बंधनों का समतिक्रमण कर देता है। याने बंधनों के क्षेत्र से पार ले जाता है।

सब्बवट्टविनासनो - यह समस्त संसार वर्तन का याने भव चक्र का विनाश कर देता है।

निय्यानिको - यह सीधे निर्वाण की ओर ले जाने जानेवाला है।

उत्तरणो - भव सागर से पार उतार देनेवाला है।

तण्हा-मूल-विसोसनो - तृष्णा की जड़ को सुखा देने वाला है।

विसमूलं आघातनं छेत्वा पापेति निब्बुतिं - पूर्व संस्कार की विषभरी जड़ों को गहरी चोट पहुँचाकर उन्हें काट देता है और सारे पापों की अग्नि को शांत कर देता है।

अञ्ञाणमूल-भेदाय, कम्मयन्त-विघाटनो - अज्ञान याने अविद्या के मूल का भेदन कर, कर्म यंत्र को विघटित कर देता है जिससे कि नये कर्म-संस्कार बनने बंद हो जाते हैं।

विञ्ञाणानं परिग्गहे, ञाणवजिर-निपातिनो - ज्ञान वज्र गिराकर भव-भव में प्रवाहमान विज्ञान (चित्त) का खात्मा कर देता है।

वेदनानं विञ्ञापनो, उपादानप्पमोचनो - सभी संवेदनाओं को जान लेने की क्षमता प्रदान करता है और उनके अनित्य स्वभाव को समझते हुए उनके प्रति होनेवाली आसक्तियों के स्वभाव को दूर करता हे।

भवं अङ्गारकासुं व, ञाणेन अनुपस्सनो - विपश्यना के ज्ञान से अंगारों सदृश भव का सही दर्शन करा देता है।

महारसो सुगम्भीरो, जरामच्चुनिवारणो।
अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो, दुक्खूपसमनो सिवो॥

धर्म का रस सारे रसों से बढ़कर है। इस माने में यह आर्य अष्टांगिक मार्ग वाला धर्म महारसमय है। सुगंभीर है। जरामृत्यु से छुटकारा दिलानेवाला है। सभी दुःखों का उपशमन करनेवाला है। शिव है, मंगलमय है।

कम्मं कम्मन्तिञत्वान, विपाकञ्च विपाकतो - अपनी संवेदनाओं को देखते हुए और उनके प्रति की जाने वाली प्रतिक्रियाओं को देखते हुए साधक को इस योग्य बनाता है कि वह नये कर्म को कर्म जान सके और पुराने कर्मों के विपाक को विपाक जान सके और इस प्रकार -

पटिच्चुप्पन्न-धम्मानं, यथावालोक-दस्सनो - क्षण प्रतिक्षण उत्पन्न सच्चाइयों को यथाभूत दर्शन के ज्ञान-आलोक में देख सकने और इंद्रियातीत निर्वाण के परम सत्य को सम्यक् ज्ञान के आलोक में सम्यक् दर्शन द्वारा दिखा सकने वाला,

महाखेमङ्गमो सन्तो, परियोसान भद्दको - महान योग क्षेम अवस्था को पहुँचाने वाला अंततः परम कल्याणकारी है यह धर्म।

मुक्ति मार्ग का यह सफलयात्री अरहन्त मिगजाल अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर धर्म पथ का विज्ञापन करता है। जिसने धर्म की धर्मता स्वयं अनुभव की है और उससे स्वयं धन्य हुआ है। उस महान साधक के हर्ष उद्गारों से हमें भी प्रेरणा मिले और हम भी उत्साह उमंग के साथ मुक्तिमार्ग पर कदमकदम आगे बढ़ते हुए अपना कल्याण साध लें।

कल्याणमित्र,

स.ना.गो.

***

मिटाओ मेरे भय आवागमन के

डॉ. ओमप्रकाश

मिटाओ मेरे भय आवागमन के, फिरूं न जनम पाता बिलबिलाता -

बड़े ही करुण स्वर से आर्तनाद करता हुआ भक्त याचना करता है कि हे प्रभु! मुझे इस भवसागर से पार उतारो और बार-बार के इस जन्म-मरण के चक्र से मुक्त करो! क्योंकि जन्म लेना भी दुःख है, संसार में रहना भी दुःख है और मरना भी दुःखमय है। परंतु क्या भक्त ने कभी यह भी सोचा कि यह आवागमन क्या है? क्यों है? और इसका कारण वास्तव में क्या है? हम पैदा होते क्यों हैं? दार्शनिकों ने अनेक अटकलें, अनुमान और तर्क दिए हैं। कोई कहता है यह सृष्टिकर्त्ता की लीला है। वह जीव को संसार में भेजता है और उसके खेल देखता है। किसी को राजा बनाता है तो किसी को रंक; किसी को अपंग, लूला लंगड़ा, अंधा, बहरा तो किसी को सर्वांगसुंदर देह देता है। किसी को ज्ञानी और बुद्धिमान बनाता है तो किसी को निपट मूढ़।

दूसरे कहते हैं - नहीं वह न्यायकारी है, दयालु है। अकारण वह किसी को ऐसा-वैसा नहीं बना देता। उसके नियम हैं। बनी-बनायी लीक है। व्यक्ति अपने पूर्वजन्म के कृतकर्म के या संस्कारों के फलस्वरूप जन्म पाता है। नया शरीर, नयी योनि मिलती है और उन कर्मों के फल भोगने व नये कर्म करने के लिए ही उसके जन्म-मरण का चक्र चलता है। अस्तु!

जो पूर्वजन्म और कर्म-फलसिद्धांत को मानते हैं उन्हें यह मान्यता अच्छी, युक्तिसंगत और हृदयग्राही लगती है। इसे मान लें तो लगा कि जन्म कर्म-फल भोगने के लिए है और वह कर्म करने के लिए स्वतंत्र है। उसे बुद्धि दी गयी है, ज्ञान दिया गया है कि वह सोच समझकर ऐसे कर्म

करे जिनके फल भोगने के लिए दुबारा जन्म लेने की आवश्यकता न पड़े। अर्थात, जन्म के बंधन से मुक्त होना है तो कर्म के बंधन से भी मुक्त होने का प्रयत्न करे। आवागमन का कारण हमारे कर्म ही हैं। किसी अन्य दैवी शक्ति की लीला आदि नहीं। इस जन्म के किये कर्म-संस्कार चित्तधारा या आत्मा जो कुछ भी कह लें, उसके साथ आगे जाते हैं। उन्हीं के अनुसार भावी जन्म होता है।

कर्मन की गति न्यारी- नहीं, बल्कि यह गति निश्चित है। याने

जो जस करइ सो तस फल पावा - अच्छे कर्म अच्छा फल देते हैं और बुरे कर्म बुरा। अच्छे बुरे की क्या पहचान है? सरल शब्दों में भगवान बुद्ध ने कहा -

सब्ब पापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।
सचित्त परियोदपनं, एतं बुद्धान सासनं॥

सभी प्रकार के पापों को न करना, कुशल कर्मों का संपादन करना और अपने चित्त को निर्मल करना यही समस्त बुद्धों (ज्ञानियों) की शिक्षा है।

पाप कर्म क्या होते हैं? और कुशल कर्म क्या होते हैं? अपनी वाणी या शरीर से दूसरे प्राणियों की हानि करना ही पाप है। जिस कर्म से दूसरों को सुख पहुँचता हो, शांति मिलती हो, उनका मंगल होता हो वही पुण्य है, वही कुशल कर्म है। जो कर्म दूसरों को हानि पहुँचाए उससे बचें और जो दूसरों को लाभ पहुँचाए वही करें।

इस मापदंड से कर्म को मापा जाय तो पाप कर्म से छुटकारा रहेगा और चित्तधारा पर बँधनेवाले कर्म-संस्कार नहीं बनेंगे। समताभरे मन से स्थितप्रज्ञ व्यक्ति कुशल कर्म करते हुए बंधन में नहीं पड़ता। क्योंकि कर्मसंस्कार ही जन्म-मरण के कारण हैं। तो हम स्वयं ही कर्ता हैं। बुद्धवाणी में कहा गया है -

अत्ता ही अत्तनो नाथो, अत्ता ही अत्तनो गति।

हर आदमी अपना मालिक स्वयं है। अपनी गति खुद ही बनाता है। इसलिए स्वयं ही इस आवागमन के चक्र से छूटना होगा। सो कैसे?

पुराने संस्कार क्षीण हो जायं, नये बनने ना पावें - जब ऐसा होगा तब स्वयं ही मिटेंगे तेरे भय आवागमन के।

भगवान बुद्ध ने जब इस सत्य का अनुभव किया तो उनके मुँह से जो उद्गार निकले वे बड़े महत्त्व के हैं,

अनेक जाति संसारं, सन्धाविस्सं अनिब्बिसं।
गहकारं गवेसन्तो, दुक्खा जाति पुनप्पुनं।।
गहकारक दिट्ठोसि, पुन गेहं न काहसि।
सब्बा ते फासुका भग्गा, गहकूटं विसङ्खितं।
विसङ्खारगतं चित्तं, तण्हानं खयमज्झगा।।

कितनी बार जन्म लिया इस संसार में, गिनती नहीं। जन्म लेता गया और बिना रुके (मृत्यु की ओर) दौड़ लगाता गया। इस कायारूपी घर बनानेवाले की खोज करते हुए पुनः पुनः दुःखमय जीवन में पड़ता ही रहा। अब घर बनानेवाले को देख लिया। अब नया घर नहीं बना सकेगा। सारी कड़ियां भग्न हो गयीं, घर का शिखर टूट गया, घर बनाने की सारी सामग्री फेंक दी गयी। चित्त पूर्वसंस्कारों से विहीन हो गया, भविष्य के लिए कोई तृष्णा नहीं रह गयी। तृष्णा का समूल नाश हो गया। विमुक्त हो गया।

हर व्यक्ति ऐसा कर सकता है। हर व्यक्ति इस अवस्था तक पहुँच सकता है। पर काम स्वयं ही करना होगा।

(श्री सत्यनारायणजी गोयन्का की पुस्तक 'आत्मदर्शन' के आधार पर)

सी-३४, पंचशील एन्क्लेव, नई दिल्ली - १०००१७.